भारत में दुर्लभ बीमारियों के लिए दवाओं और इलाज तक पहुँच

बेबी देवानंद डी. (अपनी माँ दीपा एस. के माध्यम से) और अन्य बनाम एम्पलॉइज़ स्टेट इंश्योरेंस कॉरपोरेशन व अन्य में दिल्ली उच्च न्यायालय के फ़ैसले पर आधारित

2017 SCC OnLine Del 12779

एक दुर्लभ संकट

यह कहानी है दो बच्चों द्वारा न्याय के लिए अदालत का दरवाज़ा खटखटाने की, जो दुर्लभ श्रेणी में आने वाली दो विभिन्न जेनेटिक बीमारियों से पीड़ित थे

वे क्या चाहते थे?

मई 2017 में गोशे टाइप I और हर्लर सिंड्रोम टाइप I से पीड़ित दो बच्चों ने अपने अभिभावकों के माध्यम से दिल्ली उच्च न्यायालय में दो याचिकाएँ दाखिल कीं, जिनमें उन्होंने एम्प्लॉई स्टेट इंश्योरेंस कॉरपोरेशन (ई.एस.आई.सी.) द्वारा जारी दिशानिर्देशों के कुछ प्रावधानों को चुनौती दी. ये प्रावधान जीवन-रक्षक दवाओं और इलाज तक उनकी पहुँच को सीमित करते थे.

ये दिशानिर्देश क्या थे? किस तरह ई.एस.आई.सी. के दिशानिर्देश उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करते थे? दुर्लभ बीमारियाँ क्या हैं? और सबसे बढ़ कर, अदालत उनकी मदद करने के लिए क्या कर सकती थी?

दुर्लभ बीमारियों की पहेली

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू. एच. ओ.) आजीवन अशक्त कर देने वाली ऐसी बीमारियों या समस्याओं को दुर्लभ बीमारियों के रूप में परिभाषित करता है जो प्रति 1000 लोगों में 1 या उससे कम व्यक्तियों में पाई जाती हैं. कई देशों में दुर्लभ बीमारियों से निबटने के लिए भिन्न मानदंड हैं जो आबादी में बीमारी की व्यापकता, स्वास्थ्य व्यवस्था और संसाधनों की उपलब्धता जैसे स्थानीय संदर्भों पर आधारित होते हैं. क़रीब 80 फ़ीसदी दुर्लभ बीमारियाँ अपनी प्रकृति में जेनेटिक होती हैं,

दुर्लभ बीमारियाँ आबादी के एक छोटे हिस्से को प्रभावित करती हैं, इसलिए दवा बनाने वाली कंपनियाँ उनके इलाज के लिए दवाएँ विकसित करने में निवेश नहीं करती हैं; इस बात की उम्मीद कम होती है कि इस लागत की वसूली दवाओं की बिक्री से हो सकेगी.

दुर्लभ बीमारियाँ मौजूदा समय में दुनिया की कुल आबादी के 3.5-5.9% को प्रभावित करती हैं.

ये बीमारियाँ कम व्यापक हैं, जिसके चलते:

>विशेषज्ञता और ज्ञान का अभाव होता है

>निदान और देख-भाल तक सीमित पहुँच होती है

>सार्वजनिक जागरूकता की एक आम कमी होती है

C-HELP

JUSTICE adda

इन बीमारियों की देखभाल और इलाज में मदद करने के राज्य क्या करता है?

एम्पलॉइज़ स्टेट इंश्योरेंस कॉरपोरेशन, भारत सरकार के श्रम और रोज़गार मंत्रालय के तहत आता है. इसे एम्पलॉइज़ स्टेट इंश्योरेंस एक्ट, 1948 (ई.एस.आई. एक्ट) के तहत स्थापित किया गया था जो कर्मचारियों के लिए सामाजिक सुरक्षा (सोशल सेक्योरिटी) से संबंधित एक महत्वपूर्ण क़ानून है.

याचिकाकर्ताओं ने जिन दो प्रावधानों को चुनौती दी वे **ई.एस.आई.सी. डिसीजंस ऑन मेडिकल सर्विसेज़, जुलाई 2014 ("दिशानिर्देश")** के प्रावधान 5.1 और 5.3 थे.

प्रावधान 5.1 कहता है कि जो प्रक्रियाएँ केंद्र सरकार स्वास्थ्य योजना के तहत नहीं आतीं, उनके लिए खर्च की कुल राशि की अधिकतम सीमा प्रति लाभान्वित सालाना 10 लाख रुपए है. प्रावधान 5.3 कहता है कि बीमित व्यक्तियों के बच्चों के संबंध में, उन पैदाइशी बीमारियों में जिनमें सुपर स्पेशियलिटी ट्रीटमेंट ("एस.एस.टी.") को रेफर किए जाने की ज़रूरत पड़े, और जेनेटिक समस्याओं की स्थितियों में, बच्चे अधिकतम 10 लाख रुपयों की बीमा सहायता के पात्र होंगे, बशर्ते बच्चे का जन्म तब हुआ हो जब बीमित व्यक्ति एस.एस.टी. के योग्य हो गए हों.

ये दिशानिर्देश याचिकाकर्ताओं और ऐसी ही स्थितियों का सामना करने वाले दूसरे लोगों को ज़रूरी इलाज हासिल करने में रुकावट थे, जो केंद्र सरकार की योजना के तहत नहीं आते थे क्योंकि वे एक दुर्लभ बीमारी से पीड़ित थे.

उच्च न्यायालय ने क्या कदम उठाए?

मामला अभी अदालत के सामने लंबित ही था जब अदालत ने एक अंतरिम आदेश जारी करते हुए ई.एस.आई.सी. को निर्देश दिया कि वह दोनों बच्चों के लिए समुचित इलाज शुरू करे या उन्हें सूचीबद्ध एस.एस.टी. अस्पताल में इलाज के लिए रेफर करे, जिसमें इस इलाज की लागत ई.एस.आई.सी. को वहन करना होगा.

अदालत ने एक एमिकस क्यूरी ("अदालत के मित्र") को नियुक्त किया, जो किसी भी पक्ष का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे, बल्कि उन्होंने प्रासंगिक तथ्यों और क़ानून के ज़रिए अदालत को अपने फ़ैसले पर पहुँचने में मदद की.

मामला लंबित होने की अवधि में, ई.एस.आई.सी. ने प्रावधान 5.1 का संशोधन कर दिया जिसके तहत कहा गया कि इलाज की लागत 10 लाख रुपयों से अधिक होने की स्थिति में हरेक मामले पर अलग-अलग विचार किया जाएगा. इसने प्रावधान 5.3 में भी बदलाव किया जिसके तहत एस.एस.टी. की पात्रता के लिए विभिन्न तिथियाँ मुहैया कराई गईं और रोजगारदाता द्वारा मासिक योगदान का भुगतान करने में नाकाम रहने पर बीमित व्यक्ति (और उनके बच्चों) के लिए एस.एस.टी. की हक़दारी को सीमित कर दिया गया.

अतीत से एक मिसाल: मो. अहमद (अवयस्क) बनाम भारत संघ में दिया गया फैसला

अदालत ने पाया कि यह मामला उन्हीं तथ्यों और क़ानूनी संदर्भों पर आधारित है, जिन पर पहले एक फ़ैसला दिया जा चुका है. *मो. अहमद (अवयस्क) बनाम भारत संघ (2014) 6 HCC (Del) 118* के इस फ़ैसले में अदालत ने एक बच्चे के इलाज की व्यवस्था करने का आदेश दिया था जो गोशे बीमारी से पीड़ित था.

मो. अहमद मामले में अदालत ने कहा था कि शक्तियों के बँटवारे के सिद्धांत के कारण अदालत के पास इसकी शक्ति नहीं है कि वह सरकार को दुर्लभ बीमारियों पर एक नीति बनाने को कहे, लेकिन इसने संविधान के अनुच्छेद 21 के आधार पर मामले का फ़ैसला सुनाया और कहा कि जीवन रक्षक दवाओं तक पहुँच स्वास्थ्य के अधिकार का एक घटक तत्व है और उसका हनन नहीं किया जा सकता है. इसने कहा,

> "अदालत का मानना है कि अगर अनुच्छेदों 14 और 21 में दर्ज उनके जीवन का अधिकार और समानता के अधिकारों को अवास्तविक नहीं बनाना हो तो सरकार को अपने स्वास्थ्य खर्च का विस्तार करने पर गंभीरता से विचार करना चाहिए है."

क्या क़ानून दुर्लभ बीमारियों के इलाज की माँग करता है?

बेबी देवानंद मामले में मो. अहमद मामले के फ़ैसले का हवाला देते हुए अदालत ने दुर्लभ बीमारियों को अनुच्छेद 21 के व्यापक दायरे में स्थापित किया और कहा कि:

"हालाँकि सामान्य तौर पर अनुच्छेद 21 के तहत ज़िम्मेदारियों को प्रगतिशील रूप से साकार किए जाने योग्य समझा जाता है जो संसाधनों की अधिकतम उपलब्धता पर निर्भर करता है, तब भी कुछ ज़िम्मेदारियाँ ऐसी हैं जो केंद्रीय हैं और संसाधनों की सीमाओं के बावजूद उनसे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता. आसान क़ीमतों पर ज़रूरी दवाओं तक पहुँच को संभव बनाना भी ऐसी ही एक केंद्रीय ज़िम्मेदारी है."

दुर्लभ बीमारियों के सामाजिक निर्धारकों पर अदालत ने कहा,

"गोशे और हर्लर सिंड्रोम जैसी दुर्लभ जेनेटिक बीमारियों का इलाज संभव है, इसके बावजूद इलाज इतना महँगा है कि यह इलाज में ही रुकावट बन जाता है, बीमार लोगों की बहुसंख्या इस तरह पहुँच नहीं पाती. गोशे और हर्लर सिंड्रोम जैसी दुर्लभ जेनेटिक बीमारियों का बोझ तुलनात्मक रूप से निम्न और मध्यम आय वाले देशों को उठाना पड़ता है, और भारत में इन बीमारियों से सबसे असुरक्षित व्यक्ति गरीब और अल्पसंख्यक हैं. इन समूहों की जाँच और इलाज की सेवाओं तक अक्सर पहुँच नहीं होती है और उनमें बीमारियों और रोकथाम की तकनीकों के बारे में जागरूकता का अभाव होता है. इसके नतीजे में सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट को सामाजिक और आर्थिक कारक आगे बढ़ा रहे हैं."

दवाओं में वित्तीय मदद न करने की क़ीमत: एक नीतिगत "शून्य"

अदालत ने यह भी कहा कि मो. अहमद मामले में दिए गए इसके फ़ैसले के बावजूद, दुर्लभ बीमारियों के लिए किसी नीतिगत रूपरेखा का अभाव बना हुआ था. इसने स्वास्थ्य मंत्रालय को फिर से निर्देश दिया कि वह ऐसी एक नीति बनाने के लिए बैठक बुलाने पर विचार करे.

इसके बाद मंत्रालय ने नेशनल पॉलिसी फ़ॉर ट्रीटमेंट ऑफ़ रेअर डिज़ीजेज़ (2017) की रूपरेखा तैयार की ताकि उन लोगों की मदद की जा सके जो राज्य या केंद्र की किसी भी मौजूदा स्वास्थ्य योजना के तहत इलाज के लिए वित्तीय सहायता के पात्र नहीं हैं. इसने अगस्त 2017 में इस बात की सूचना अदालत को दी. लेकिन नवंबर 2018 तक मंत्रालय ने अदालत को सूचित किया कि यह इस नीति को वापस ले रही है क्योंकि ग़ैरक़ानूनी ढंग से बनाई गई थी इसलिए कि सार्वजनिक स्वास्थ्य एक ऐसा मामला है जिस पर क़ानून बनाने की ज़िम्मेदारी राज्यों पर है. इस वापसी को सरकार ने यह कहते हुए भी उचित ठहराया कि दुर्लभ बीमारियों के

आगे चल कर दुर्लभ बीमारियों पर दवाओं और इलाज तक पहुँच के बारे में मास्टर अर्नेश शॉ व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य (याचिका संख्या 5315, साल 2020) के दूसरे मामले में अदालत ने एक निश्चित समयसीमा के भीतर नीति को अंतिम रूप देने तक मंत्रालय द्वारा उठाए जा रहे कदमों पर बारीकी से अवलोकन किया.

सामाजिक सुरक्षा क्या है?: अदालत के फ़ैसले

अदालत ने फ़ैसला दिया कि:

ई.एस.आई.सी. नियमन अपने दायरे से किन्हीं विशेष बीमारियों को बाहर नहीं कर सकते हैं और न ही प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक सेवाओं या एस.एस.टी. के आधार पर श्रेणियाँ बना सकते हैं, क्योंकि यह एक सामाजिक कल्याण क़ानून यानी एम्पलॉइज़ स्टेट इंश्योरेंस एक्ट, 1948 की उपज है - और किसी व्याख्या पर संदेह की स्थिति में इस क़ानून का मतलब इस तरह लगाया जाना चाहिए कि यह संभावित लाभान्वित यानी कर्मचारी के पक्ष में जाए.

ई.एस.आई.सी. के इन दावों को ख़ारिज कर दिया गया कि यह सिर्फ़ तर्कसंगत इलाज ही मुहैया करा सकती है और यह कि इसे बीमित व्यक्ति या उसपर निर्भर व्यक्तियों को एस.एस.टी. मुहैया कराने के लिए 'राज्य' का हिस्सा नहीं माना जा सकता है. अदालत की राय में जीवन रक्षक दवाओं को 'अतार्किक' नहीं कहा जा सकता है और ई.एस.आई.सी. के पास नीतिगत हस्तक्षेपों और क़ीमतों पर नियंत्रण जैसे उपायों के ज़रिए इलाज की लागत को नियमित करने की शक्ति है.

ई.एस.आई.सी. के इस दावे को भी ख़ारिज कर दिया गया कि उसका कामकाज एक निजी बीमा कॉरपोरेशन से मिलता-जुलता है; निजी बीमा के मामले में बीमित व्यक्ति और बीमाकर्ता के बीच की ज़िम्मेदारी अनुबंध पर आधारित होती है, जिसमें बीमाकर्ता लाभ के आधार पर काम करता है, जबकि एक सार्वजनिक बीमा योजना में ज़िम्मेदारी की प्रकृति एक क़ानून (ई.एस.आई. एक्ट) पर आधारित है और ई.एस.आई.सी. का उद्देश्य कर्मचारी का कल्याण है

नियोक्ता द्वारा प्रीमियम का भुगतान नहीं किए जाने पर बीमित व्यक्ति और उनके निर्भर व्यक्तियों के एस.एस.टी के लिए अपात्र हो जाने संबंधी दिशानिर्देश बीमित व्यक्ति को दंडित करने के समान है, और इसलिए क़ानूनी रूप से बुरा है

जिन दिशानिर्देशों को चुनौती दी गई थी वे मूल क़ानून (ई.एस.आई. एक्ट) और क़ानून द्वारा निर्मित नियमनों के विरुद्ध थे और इस तरह वे दिशानिर्देश ग़ैरक़ानूनी थे

मानवाधिकार आधारित एक नज़रिए का 'सुझाव'

इन आदेशों को पारित करने के साथ-साथ अदालत ने केंद्र सरकार के सामने कुछ सिफ़ारिशें रखीं, जो बाध्यकारी नहीं थीं:

स्वास्थ्य का अधिकार को साकार करने के लिए दुर्लभ बीमारियों और एस.एस.टी. को लेकर एक मानवाधिकार आधारित नज़रिया अपनाएँ

दुर्लभ बीमारियों के सामाजिक निर्धारकों पर ध्यान केंद्रित करें

नई, अधिक कारगर दवाओं और निदान पर शोध और विकास के लिए प्रोत्साहनकारी क़ानूनी माहौल का निर्माण करें, और मौजूदा दवाओं की क़ीमतें घटाएँ

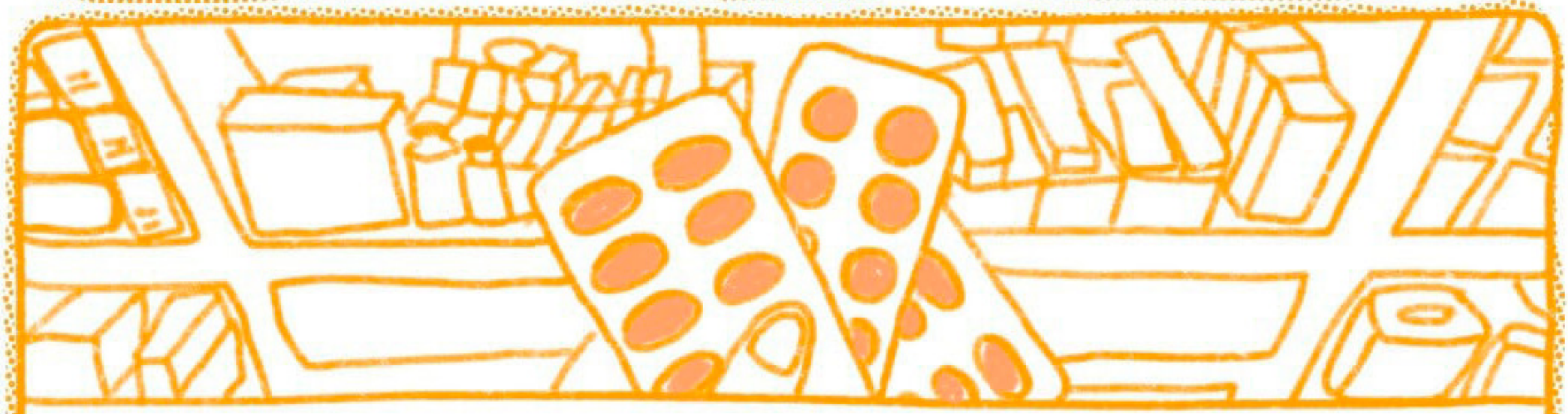

राज्य, सिविल सोसायटी और बड़ी फ़ार्मास्यूटिकल कंपनियाँ आगे आएँ और इस नज़रिए को अमल में ले आएँ ताकि ज़मीनी स्तर पर इलाज को उपलब्ध कराया जा सके, उसी तरह जैसे एच.आई.वी./एड्स पर वैश्विक अधिकार अभियान ने सार्वजनिक समर्थन को एकजुट किया, शोध को प्रेरित किया और जीवन-रक्षक दवाओं और इलाज तक पहुँच को बेहतर बनाया.

दुर्लभ बीमारियों के लिए राष्ट्रीय नीति 2021: आज हम कहाँ खड़े हैं?

30 मार्च 2021 को स्वास्थ्य मंत्री ने दुर्लभ बीमारियों के लिए राष्ट्रीय नीति 2021 को मंज़ूरी दे दी. इस नीति के लक्ष्य हैं:

इस नीति के लक्ष्य हैं:

रोकथाम सेवाएँ जिसमें सूचना, शिक्षा, परामर्श (आई.ई.सी.) कार्यक्रम, विवाह के पहले और बाद में तथा गर्भधारण के पहले और बाद में दुर्लभ बीमारियों की स्क्रीनिंग शामिल है.

इंडियन काउंसिल ऑफ़ मेडिकल रिसर्च (आईसीएमआर) और अन्य सरकारी संस्थाएँ फार्मास्यूटिकल कंपनियों के साथ मिल कर दवाओं की एक पाइपलाइन पर शोध कर उनका विकास करेंगी ताकि दुर्लभ रोगों के लिए दवाओं तक पहुँच और क़ीमतों को बेहतर बनाया जा सके.

दुर्लभ बीमारियों के लिए दवाओं पर आयात शुल्क को कम करने के लिए वित्त मंत्रालय की पैरवी करना.

नेशनल फार्मास्यूटिकल प्राइसिंग अथॉरिटी (एनपीपीए) और अन्यों को दुर्लभ बीमारियों के लिए दवाओं की क़ीमतों को सार्वजनिक रूप से उपलब्ध कराना होगा और स्वास्थ्य मंत्रालय के साथ मशविरा करते हुए उनकी क़ीमतों को कम करने के लिए कोशिशें करनी

आई.सी.एम.आर. दुर्लभ बीमारियों की एक राष्ट्रीय अस्पताल आधारित रजिस्ट्री की शुरुआत करेगा ताकि बीमारी के व्यापक प्रसार संबंधी पर्याप्त आँकड़े उपलब्ध हों जिनसे दुर्लभ रोगों को परिभाषित करने और उन पर ज़रूरी शोध करने में मदद मिले

8 सरकारी तृतीयक अस्पतालों को दुर्लभ बीमारियों के निदान, रोकथाम और इलाज के लिए सेंटर ऑफ़ एक्सीलेंस के रूप में नामांकित क

आरंभिक स्क्रीनिंग और रोकथाम के लिए “निदान केंद्रों” की स्थापना, साथ ही मौजूदा द्वितीयक और तृतीयक स्वास्थ्य सुविधाओं को मज़बूत करना.

भारत सरकार द्वारा एक तृतीयक अस्पताल में एक एकमुश्त इलाज के लिए 20 लाख रुपयों की वित्तीय सहायता.

निजी और कॉरपोरेट दानदाताओं द्वारा इलाज में सामूहिक वित्तीय मदद के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्मों की स्थापना.

नीति जहाँ कइयों के लिए जीवनरेखा मुहैया कराने का वादा करती है, वहीं कई चिंताएँ अभी भी बनी हुई हैं. मुख्य चिंता इस नीति के लिए मुहैया कराई गई रक़म को लेकर है. इस बात की पड़ताल करना भी ज़रूरी है कि यह नीति और इस पर अमल क्या अदालत की उस सिफ़ारिश पर आधारित है जिसमें उसने दुर्लभ बीमारियों में एक मानवाधिकार का नज़रिया अपनाने की बात कही थी.